अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका

**ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)**

# बाजारवाद और संचार–माध्यम

## (सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. ममता, एसोसिएट प्रोफेसर,
भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

**सार (Abstract)**

बाज़ार वस्तुओं को 'जरूरत' नहीं 'चाहत' बना देता है। जब वस्तुओं का उपभोग 'जरूरत' के लिए नहीं बल्कि 'चाहत' की पूर्ति के लिए हो रहा हो, तो समझ लीजिए कि हम बाज़ारवाद के शिकन्जे में फँस चुके हैं। उत्तरआधुनिकता के दौर का बाज़ार पहले हमारे भीतर पुरानी चीजों के प्रति वितृष्णा पैदा करता है और फिर नई वस्तुओं को पाने की चाहत। पूँजीवादी व्यवस्था का अस्तित्व 'उपभोग' पर ही टिका है। संचार-माध्यम 'उपभोग' बढ़ाने की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं डिजीटल मीडिया- सभी अपने-अपने स्तर पर समाज को 'उपभोग' के लिए उकसाने का प्रयास कर रहे हैं। संचार माध्यमों के जरिए 'उपभोग' के संदेशों का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है? प्रस्तुत आलेख में इसका आंकलन करने का गंभीर प्रयास किया गया है।

**बीज शब्द**

संचार-माध्यम, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, बाजारवाद, साइबरस्पेस।

## प्रस्तावना

वर्तमान युग सूचना-विस्फोट का युग है। सामाजिक परिवर्तनों की गति में जो तीव्रता आई है, उसमें संचार-माध्यमों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संचार-माध्यमों और पूंजीवाद में बहुत गहरा संबंध है। आज से कहीं दो सौ साल पहले, कहीं छः सौ साल पहले और कहीं दो सौ साल पहले यूरोपीय उपनिवेशवाद ने अपनी विजय-पताकाएँ फहरायी थीं। दूसरे विश्वयुद्ध ने उपनिवेशवाद को बेहद जर्जर कर दिया और धीरे-धीरे इन शक्तिशाली देशों के हाथों से एक एक करके सभी औपनिवेशिक देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। फलतः अर्थदोहन की आदी इन शक्तियों ने अपनी साम्राज्यवादी भूख की तृप्ति के लिए नए सिरे से प्रयास किए। अब की बार भौतिक भूखण्डों पर कब्जा करने की बजाय मानसिक क्षेत्रों पर अधिकार जमाने का प्रयास किया गया। उपनिवेशवाद ने आधुनिकता का मार्ग खोला। इस शताब्दी के दूसरे चरण तक आते-आते आधुनिकता ने हर सभ्यता पर अपना अधिकार जमा लिया। पहले उपनिवेश के मुख्य अस्त्र सैन्य-सामग्री थे, वहाँ आधुनिकता ने संचार तकनीक तथा सैन्य तकनीक दोनों की सहायता से सभ्यताओं पर अपना प्रभुत्व जमाया। पहले की तरह अब उपनिवेशों पर पकड़ बनाए रखने के लिए, वहाँ डेरा जमाए रखने की भी जरूरत नहीं थी। इंटरनेट, सेटेलाइट चैनल तथा साइबर स्पेस के माध्यम से साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने देश में बैठे-बैठे नवउपनिवेशों से अर्थ-दोहन की प्रक्रिया जारी रखी। संचार-माध्यमों का पूंजीवाद से घनिष्ठ संबंध है। पूंजीवाद के दो रूप हैं। पहला उत्पादक पूंजीवाद यानि Productive Capitalism तथा दूसरा वित्तीय पूंजीवाद यानि Financial Capitalism. उत्पादक-पूंजीवाद में 'पूंजी' का इस्तेमाल वैयक्तिक लाभ के लिए किया जाता था किन्तु इसमें मुनाफे के साथ ही कल्याणकारी योजनाएँ भी 'उत्पाद' के रूप में दिखाई देती थी। जैसे ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक भारत में सुचारू डाक-व्यवस्था, रेल-लाइन और सड़क का निर्माण मूलतः अपनी स्वार्थ-सिद्धि अथवा अर्थ-दोहन के लिए किया था किन्तु इस पूंजी-निवेश ने आम-आदमी की तकलीफें भी दूर की थीं। सड़कें, रेल, डाक-व्यवस्था - प्रोडक्टिव कैपिटलिज्म के उत्पाद थे। दूसरी तरफ वित्तीय पूंजीवाद अर्थात् फाइनैन्शयल कैपिटलिज्म के अन्तर्गत पूंजी निवेश का आम आदमी को सीधे-सीधे कोई नहीं पहुँचता। मतलब साफ है कि इस पूंजीवाद में सड़कें, रेल-लाइन आदि जैसी कल्याणकारी योजनाएँ गौण-उत्पाद के रूप में भी प्राप्त नहीं होती। संचार-माध्यम अथवा टेलीकाम्यूनिकेशन ऐसा ही पूंजी-निवेश है। संचार-जगत पर बड़ी-बड़ी कम्पनियों के नियंत्रण होने के कारण, इसकी डोर गिने-चुने व्यक्तियों के हाथों में आ गई और यह एक व्यवसाय बन गया। चूँकि आधुनिक संचार-

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

प्रौद्योगिकी उत्तरआधुनिकता के वैचारिक दर्शन पर टिकी है अतएव संचार-माध्यमों पर उत्तरआधुनिकता का सम्यक् प्रभाव परिलक्षित होता है। उत्तरआधुनिकता यथार्थों की सुपर मार्केट है। जो जिस यथार्थ का इच्छुक हो, उसे अपने यथार्थ के रूप में ग्रहण कर सकता है। यथार्थ के इस छद्म रूप का संचार-माध्यम बखूबी प्रस्तुतीकरण कर रहे हैं। इन माध्यमों ने विशिष्ट संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति के बीच की सीमाओं को नकारते हुए दोनों के भेद को मिटा दिया। अधिकाधिक लाभ कमाने और अपने साम्राज्य का यथासम्भव विस्तार करने के लिए बिकाऊ संघटकों यथा - विवादास्पद घटनाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन की चटपटी रिर्पोटिंग, फिल्म-जगत की बातों को प्रमुखता देना, जातीय एवं साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने वाली सनसनीखेज खबरों तथा सेक्स-फार्मूलों का इस्तेमाल बहुतायत से किया जाने लगा। टेबलायड पत्रकारिता और पैपराजी इसी व्यवसायिक एप्रोच की चरम परिणति है।

संचार-माध्यमों की अर्थ-केन्द्रित प्रकृति के सन्दर्भ में प्रसिद्ध मीडिया-विशेषज्ञ ग्राहम मर्डोक और पीटर गोल्डिंग 'मास मीडिया एंड सोसायटी' नामक पुस्तक में कहते हैं कि 'पूंजीवाद राज्य के समाज को अधिकांश सूचनाएं जनसंचार के माध्यमों से मिलती हैं और इन सूचना-तंत्रों पर पूंजीपति-वर्ग का नियंत्रण होता है।' ग्राहम मर्डोक और पीटर गोल्डिंग की यह मान्यता किसी हद तक सही है। आज विश्व में जिसके पास जिस अनुपात में सूचना-तंत्र का स्वामित्व है, वह उसी अनुपात में समृद्ध एवं शक्तिशाली है। कम्प्यूटर-जगत के बेताज बादशाह बिल-गेट्स और सेटेलाइट चैनल्स के किंग माने जाने वाले रूपर्ट मर्डोक - इसके ज्वलंत उदाहरण है। सूचना की नवीनतम संचार-तकनीक अब बिल-गेट्स और रूपर्ट मर्डोक जैसे 'ग्लोबल कैपिट्लिस्ट' के हाथों में आ गई है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में संचार-माध्यमों की स्थिति देखें तो 'ग्लोबल कैपिटलिज्म' की स्थिति और साफ हो जाएगी। दूरदर्शन के सरकारी चैनलों को छोड़कर अधिकांश चैनलों के स्वामी अमेरिका, इंग्लैंड, सिंगापुर और हांगकांग आदि देशों के नागरिक है।[3] मार्शल मैक्लुहान के 'ग्लोबल विलेज' की 'ग्लोबल मार्केट' में श्रम भारतीय और स्वामित्व पश्चिम का है और इस तरह मार्केट में होने वाला मुनाफा पश्चिमोन्मुखी है। उत्तरआधुनिकता की तर्ज पर इन संचार-माध्यमों ने इतिहास, संस्कृति, दर्शन, भाषा मैटानैरेट्विस, साहित्य और लेखक तक को नकार दिया। आज संस्कृति अपने आप में उत्पाद बन गई है। अर्थ और संस्कृति पहले दो चीज़े थीं। अब अर्थ ही संस्कृति हो गई। 'क्लासिक' का विकल्प 'बेस्टसैलर' बन गया। 'कृति' का स्थान 'टेक्स्ट' ने ले लिया। लोकप्रिय संस्कृति या पापुलर कल्चर ने ज्ञानकेन्द्रित साहित्य को हाशिये पर लाकर खड़ा कर दिया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में इन संचार-माध्यमों से सांस्कृतिक जड़ों पर होने वाला प्रहार ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन से अधिक घातक और दासतापूर्ण होगा। तब कम-से-कम अधिकांश देशवासियों का मानस अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से मुक्त था। उसकी जड़ें अपनी मिट्टी में कहीं गहरे तक अपनी पकड़ बनाए हुए थी, किन्तु इन संचार-माध्यमों, उनमें भी विशेष रूप से टेलीविजन और इंटरनेट के माध्यम से फैलाए जा रहे सांस्कृतिक प्रदूषण ने देश की युवा-पीढ़ी के मन को उसकी संस्कृति के प्रति हीनता के बोध से ग्रस्त कर दिया है। मार्शल मैक्लुहान के 'ग्लोबल विलेज' की आड़ में 'कल्चरल इम्पीरियलिज्म' ने अपने पैर पसारने शुरू कर दिए।

जिनकी सांस्कृतिक अस्मिता होती है, वही राष्ट्र स्थायी रहते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों में आने वाली गिरावट, आने वाला क्षरण राष्ट्र की अवधारणाओं को भी प्रभावित करता है। सांस्कृतिक अस्मिता एक ओर जहाँ वैयक्तिक होती है, वहीं दूसरी ओर समूह के स्तर पर सामूहिक भी होती है। इस सामूहिक अस्मिता से ही राष्ट्र का जन्म होता है। यदि सामूहिक अस्मिता विकृतिपूर्ण हो जाएगी तो राष्ट्र भी विकृतियों का शिकार हो जाएगा। भाषा, धर्म, परिवार, विवाह, लोककलाएँ और लोकसंगीत आदि संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं और हम सभी यह अच्छी तरह से जानते हैं कि टेलीविजन, सिनेमा तथा इंटरनेट आदि ने उपभोक्तावादी संस्कृति को प्रश्रय देने के लिए भाषा, धर्म, परिवार, विवाह, लोक कलाओं और लोकसंस्कृति के साथ छेड़खानी की है। ये संचार-माध्यम जिस समाज की संकल्पना को साकार करने की कोशिश कर रहे हैं वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक संरचना के अनुरूप नहीं है। भारतीय संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति से सर्वथा भिन्न है। पश्चिम की 'स्व' की अवधारणा सिर्फ भौतिक वस्तुओं को पा लेना भर है।

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

अधिकांश धारावाहिकों में चमचमाती कारें हैं, ऐशो-आराम के साधनों से सुसज्जित आलीशान मकान हैं तथा महँगें वस्त्र पहने खूबसूरत नायक-नायिका हैं - कुल मिलाकर एक औसत आदमी में असन्तोष पैदा करने के पर्याप्त साधन हैं। यह दिखावे की संस्कृति पश्चिम की 'स्व' की अवधारणा पर आधारित है। भारतीय संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा पर आधारित है। इसका 'स्व' आत्मकेन्द्रित न होकर सम्पूर्ण कुटुम्ब को अपनी परिधि में लेकर चलता है।

संचार-माध्यमों की सबसे बड़ी गाज साहित्य पर पड़ी। कहा जाता है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने साहित्य से उसका पाठक छीना। कम्प्यूटर ने लेखन की निजी प्रक्रिया को सार्वजनिक बनाने में निर्णायक भूमिका निभाई है। मुद्रण के क्षेत्र में, कम्प्यूटर और अन्य इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के गतिशील शब्दों और ग्राफिक्स ने मुद्रित साहित्य को पछाड़ा भी है। लेकिन ऐसा माना जाता है कि संचार के नए-नए माध्यम आम आदमी को पुस्तकों से दूर ले जा रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक समाचार-पत्र को कम्प्यूटर के पर्दे पर पढ़ा जाने लगा है। भारत में भी पत्र-पत्रिकाओं के इंटरनेट संस्करण आ गए हैं। ऐसे में मुद्रित साहित्य के अस्तित्व के संकटग्रस्त होने का भय बना रहेगा। समाजशास्त्रियों का दावा है कि इससे समाज यथार्थ की ठोस दुनिया की बजाय कल्पना और फैन्टेसी की दुनिया में रहने का आदी बन जाएगा। कल्पना किसी भी समाज के विकास में उर्वरा का कार्य करती है किन्तु जब समाज कोरी कल्पना में जीने लगे, उसमें विचार-तत्व का अभाव हो जाए - तो उसमें संघर्ष का माद्दा जाता रहता है। ऐसा समाज पलायनवादी हो जाता है। उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। उत्तरआधुनिकता के प्रखर चिन्तक डेनियल बेल ने अपने एक लेख 'दि एंड ऑफ आइडियालोजी' में विचार-तत्व की समाप्ति की चर्चा की है। उनके अनुसार इस काम को अन्जाम देने में संचार-माध्यमों ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'मुद्रित साहित्य के अन्त' की जो घोषणा की जा रही है क्या वह वास्तव में सच है? और क्या उसके अंत में संचार-माध्यमों की व्यासवसायिक एप्रोच जिम्मेदार है। कहीं ऐसा तो नहीं कि साहित्य का माध्यम ही बदला है - प्रिंट मीडिया की जगह अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य दर्शक की भूमिका में बैठे अपने पाठकों की साहित्यिक भूख को शान्त कर रहा है? रामानन्द सागर, बी.आर. चोपड़ा, संजय खान, धीरज कुमार, गुलशन कुमार, नीरजा गुलेरी और गोविन्द निहलानी जैसे कई बड़े फिल्म-निर्माताओं ने 'रामायण', 'महाभारत', 'जय हनुमान', 'ऊँ नमः शिवाय', 'शिव महापुराण', 'चन्द्रकांता', तथा 'तमस' जैसी साहित्यिक कृतियों पर आधारित धारावाहिकों का निर्माण करके अपार लोकप्रियता अर्जित की। यद्यपि टी.आर.पी. रेटिंग में इन धारावाहिकों की प्रसिद्धि का प्रतिशत काफी ऊँचा रहा, तब भी विषय के आधे-अधूरे ज्ञान होने तथा अधिक से अधिक प्रायोजकों को पाने की चाहत के कारण - ऐसे धारावाहिकों में साहित्यिकता की अपेक्षा फिल्मीपन अधिक आ गया। पौराणिक चरित्रों की व्याख्या के लिए जिस समझ और दृष्टि की आवश्यकता है, उसका नितान्त अभाव अधिकांश प्रस्तुतियों में नजर आता है। तब भी ऐसे धारावाहिकों ने युवा-पीढ़ी को उसकी संस्कृति से जोड़ने में महत्वपूर्ण कार्य किया - जिसे नकारा नहीं जा सकता। संचार-माध्यमों से मेटानेरेटिव को सबसे ज्यादा आघात पहुँचा। उत्तरआधुनिकता के दौर में महाआख्यानों के प्रति नकार के भाव के परिणामस्वरूप जिस तथाकथित समाज की निर्मिति हुई, उससे सांस्कृतिक विघटन को बढ़ावा मिला। इसका ज्वलंत प्रमाण है - इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम। कमोबेश यही स्थिति प्रिंट मीडिया के साथ भी है। रोला बार्थ ने 1968 में 'लेखक की मृत्यु' की घोषणा कर दी थी। लेखक के महत्व को नकारने और आलोचक को पाठ का निर्णायक मान बैठने का परिणाम यह हुआ कि संचार-माध्यमों ने साहित्य को कलात्मक और सौन्दर्यशास्त्रीय प्रक्रिया से अलग कर दिया। लिपिबद्ध शब्दों को 'टेक्स्ट' की परिधि में सीमित करके लेखन की गरिमा को भी ठेस पहुँचाई गई। फलतः साहित्य-लेखन में भी बाजारवादी संस्कृति के दर्शन होने लगे। दरअसल अब लेखक 'Calculated Approach' के साथ लेखन में प्रवृत्त होकर लिखने लगा, जिससे साहित्य के स्तर में काफी कुछ गिरावट आई। 'द बैण्डिट क्वीन' उपन्यास इसका जीता-जागता उदाहरण है। इस उपन्यास में फूलन नामक महिला डाकू के जीवनगत तथ्यों और सत्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास की लेखिका माला सेन 'बाजार' की संस्कृति से बेहद परिचित है। वह जानती है कि 'सेंसेशन' के अभाव में उपन्यास की

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

कोई 'मार्केट वैल्यू' नहीं। अतएव उसने फूलन को एक शोषित प्रताड़ित महिला के रूप में प्रस्तुत किया, जिसको परम्परावादी कट्टर हिन्दू समाज की हिंसा और काम-वासना का शिकार होना पड़ा। उपन्यास फूलन को 'माँ काली' के दैविक पद पर सुशोभित कराके, उसके द्वारा की गई नृशंस हत्याओं की अप्रत्यक्ष रूप से वकालत करता है। एशिया के देशों की गरीबी, अस्पृश्यता, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, धार्मिक रूढ़ियों और साम्प्रदायिकता - जैसी विसंगतियों को पश्चिम ने सदा 'सेलिंग प्रोडक्ट' या कहे कि बिकाऊ माल के रूप में देखा है। 'द बैण्डिट क्वीन' में यह सब मसाले थे, सो पश्चिमी बाजार में यह उपन्यास लाखों डालर का व्यवसाय करने में सफल रहा। इसी क्रम में अरून्धती राय का 'गाड ऑफ स्माल थिंग्स' आता है। इस अंग्रेजी उपन्यास की पश्चिम में धूम मची है। उपन्यास का पहला अध्याय हजारों वर्ष पूर्व के ऐसे दमनकारी सामाजिक ढांचें के बारे में है, जिसमें प्रेम विषयक कड़े कानून हैं। भारत में कुछ खास संबंधों में सेक्स केन्द्रित प्रेम वर्जित है। उपन्यास ऐसे बन्धनों और वर्जनाओं को पूरी तरह रौंदते हुए आगे बढ़ता है। कथानक में दो कहानियाँ सामानान्तर चलती हैं। पहली जुड़वा भाई-बहन एस्था और रोहल की और दूसरी उनकी माँ अम्मू और उसके प्रेमी वेलूथा की। एस्था बचपन में किसी सदमें से ग्रस्त होने के कारण मानसिक अवसाद का शिकार है और युवावस्था तक उस स्थिति से उबर नहीं पाता। बहन अपने भाई के नैराश्य और अवसादपूर्ण जीवन से द्रवित होकर उसे अपनी बांहों में भर लेती है और उसकी परिणति दोनों के बीच सेक्स-संबंधों की स्थापना के रूप में होती है। तथाकथित 'दमनकारी सामाजिक ढांचें' और 'प्रेम के कानून' को तोड़ दिया जाता है। इन बच्चों की मां अम्मू, जो अपने पति से अलग अपने बच्चों के साथ रह रही है, के वेलूथा नामक बढ़ई से शारीरिक संबंध हैं। यहाँ उपन्यास की कथा का विस्तारपूर्वक उल्लेख करना, विषयानुकूल नहीं। तब भी इस कृति को ब्रिटेन के प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार के लिए चुने जाने के पीछे, बाजारोन्मुख संस्कृति की सक्रियता की चर्चा करना अपेक्षित है।

अक्सर जब कोई नई टेक्नालाजी आती है, तो उसके आधार पर नया उपभोक्ता-माल बनाया जाता है। उसके बाद उसके लिए उपभोक्ता-समूह चिन्हित किया जाता है और फिर उत्पादक उस लक्ष्य-समूह पर विज्ञापनों के सहारे टूट पड़ते हैं। विज्ञापनों ने सबसे खतरनाक प्रवृत्ति यह पैदा की है कि इससे विकास के सामूहिक प्रयत्नों का निषेध हो गया। भूतपूर्व वित्तमंत्री मनमोहन सिंह की उदारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप विज्ञापन और संचार - दोनों के रूप-रंग में क्रान्तिकारी बदलाव आया। 'पूंजी' के बढ़ते महत्व ने 'बाजार' को महत्वपूर्ण बना दिया और 'बाजार' में पाँव जमाने के लिए 'विज्ञापन' सबसे कारगर हथियार साबित हुआ। एक बात साफ है कि पूंजी और बाजार का सम्बंध चिरकालिक है और संचार-माध्यम का अस्तित्व भी बहुत पुराना है। मुनादी करके वस्तुओं का प्रचार कहीं-न-कहीं विज्ञापन का एक माध्यम ही है। उसके पश्चात् प्रिंट मीडिया ने बाजारवादी संस्कृति को पनपने में सहायता की। बाद में रेडियो-टेलीविजन तथा इंटरनेट पर बाजारवादी संस्कृति के छा जाने की कहानी से हम सभी परिचित हैं किन्तु पश्चिम की 'पूंजी' और पूरब का 'बाजार' – यह स्थिति भारतीय समाज के लिए नई थी। एक शीतल पेय बनाने वाली बहुचर्चित बहुराष्ट्रीय कम्पनी का विज्ञापन कहता है -'नैपोलियन, हिटलर विश्व-विजय अभियान करने चले, पर सफल नहीं हुए। हम अपने विश्व-विजय अभियान में सफल हो गए। कारण? विज्ञापन!' इससे हम समझ सकते हैं कि पूंजी और बाजार - दोनों ही विज्ञापनों की बैसाखी के बिना चार कदम भी नहीं चल सकते। यही वजह है कि विज्ञापनों पर प्रति वर्ष करोड़ों रूपये खर्च हो रहे हैं और उपभोक्ताओं को आकृष्ट करने के लिए नए-नए तरीके खोजे जा रहे हैं।

समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में समाचारों के अनुपात में विज्ञापनों की मात्रा कहीं अधिक है। एक समय था जब इस अलिखित नियम का पालन किया जाता था कि पत्र-पत्रिकाओं में 40 प्रतिशत विज्ञापन होंगे और 60 प्रतिशत समाचार। आज किसी भी बड़े से बड़े समाचार-पत्र को उठाकर देखें तो पायेंगें कि विज्ञापन 60 प्रतिशत से भी अधिक स्थान घेरे हुए है। निश्चित रूप से ऐसा अर्थलाभ की दृष्टि से किया जाता है। पहले पत्र-पत्रिकाओं का संचालन सम्पादक के हाथ में रहता था, अब प्रबंधक, सम्पादक की नियुक्ति चंद वर्षों के कांट्रेक्ट और कुछ नीतिगत शर्तों के आधार पर करता है। अब सम्पादक की हैसियत महज एक 'मैनेजर' जैसी है। अरुण शौरी और प्रीतीश नन्दी जैसे जिन एकाध सम्पादकों ने अभिव्यक्ति के मामले में

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

समझौते से इन्कार किया - प्रबन्धकों ने उन्हें सेवामुक्त कर दिया। कहने का तात्पर्य है कि उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के कारण पत्रकारिता 'मिशन' से 'प्रोफेशन' बन गई।

आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में टेलीविजन पर विज्ञापन देने की सुविधा नहीं थी। लोगों तक सन्देश पहुँचाने के लिए प्रिंट-मीडिया और रेडियो तक सीमित रहना पड़ता था और ये दोनों संचार-माध्यम दृश्यत्व के अभाव के कारण उतने प्रभावशाली नहीं थे। यहाँ बाजारवाद के सन्दर्भ में मीडिया की उपादेयता पर प्रश्नचिन्ह लगाना मेरा ध्येय नहीं है। तब भी हर साधन की एक सीमा होती है। चूंकि विज्ञापन, व्यय नहीं बल्कि एक प्रकार का निवेश है। अर्थशास्त्र के इस पारिभाषिक शब्द 'निवेश' के भीतर लाभ कमाने की इच्छा निहित है। यही कारण है कि विज्ञापन की दुनिया केवल सामानों की बिक्री की दुनिया ही नहीं है अपितु व्यवसाय भी है। विज्ञापन हमारे समाज को कई स्तरों पर प्रभावित कर रहे हैं। यह लोगों में ईर्ष्या, श्रेष्ठता तथा विशिष्टता आदि भावों को जगाकर माल के बाजार का विस्तार करता है और इस प्रक्रिया में सामाजिक संरचना को उलट-पलट देता है। नई आदतें, अवधारणाएँ और आकांक्षाएँ जन्म लेती है। विज्ञापन जरूरत पैदा करता है, फिर उन्हें पूरा करने के लिए उत्तेजित करता है। यह बार-बार अनेक बिम्बों और अभिव्यक्तियों द्वारा उस 'जरूरत' को हमारे दिमाग में ठूंस देते हैं, जिनसे उबरना मुश्किल हो जाता है। एक ही उत्पाद के विभिन्न ब्रांडों के निर्मित विज्ञापनों में प्रतिर्स्पद्धा और एक दूसरे को काट देने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रतिस्पर्धा बाजारवादी संस्कृति का प्रमुख लक्षण है। स्वयं मीडिया तक को बाजारवाद की प्रवृत्ति के चलते विज्ञापनों की शरण में जाना पड़ा। हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स और राष्ट्रीय सहारा आदि पत्रों तथा नानाविध पत्रिकाओं के प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से प्रचार-प्रसार इसका प्रमाण है। यही स्थिति इलेक्ट्रानिक मीडिया की भी है। अपने चैनल के प्रचार–प्रसार हेतु इलेक्ट्रानिक चैनल्स के साथ–साथ प्रिंट मीडिया में भी विज्ञापन दिए जाते हैं। एक दूसरे से बाजी मार लेने की तीव्र इच्छा का ही परिणाम है कि जहाँ वर्ष 96–97 में भारतीय विज्ञापनों ने 5000 करोड़ रूपयों से ज्यादा का व्यापार किया, वहीं वर्ष 2019 में यह बढ़कर 56,490 करोड़ रूपये हो गया और वर्ष 2021 के अंत तक आते-आते इसके 62,577 करोड़ रूपये होने का अनुमान है।[1]

बाजारवादी संस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षण, प्रत्येक मूड, प्रत्येक स्थिति और प्रत्येक घटना को बाजार के विस्तार के लिए भुनाने को तत्पर रहती है। चाहे वह IPL हो या 'ओलम्पिक खेल', चाहे दीपावली या दशहरा जैसे पावन पर्व हों या आजादी की 75वीं वर्षगांठ हो, या फिर चाहे सुशांत सिंह राजपूत की मृत्यु ही क्यों न हो ? संचार-साधनों के माध्यम से प्रत्येक स्थिति, चाहे वह सुखद हो या दुखद, का इस्तेमाल अपने उत्पाद की खपत को बढ़ाने में करना - इनका परम लक्ष्य है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने मृत्यु को भी पैसा कमाने का जरिया बना डाला। प्रिंसेस डायना की मृत्यु के अवसर पर एल्टन जान द्वारा गाए गए शोकगीत **'Candle in the Wind'** की कैसेट और कॉम्पेक्ट डिस्क बनाकर उनका अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विक्रय करने के पीछे शोक–संवेदना से अधिक पूंजीवादी मनोवृत्ति दिखती है।

प्रश्न उठता है कि क्या भारत जैसे विकासशील देश की जनता के सामने बेशुमार आकर्षक विज्ञापनों का दिखाया जाना संगतपूर्ण है। चंद विज्ञापनों में विदेशी नगरों और विलास-केन्द्रों की झलक होती है, कुछ विज्ञापनों में हैरत-अंगेज कारनामें तो कुछ में नारी-देह का एक 'कामोडिटी' के रूप में प्रस्तुतीकरण। अधिकांश विज्ञापन सामाजिक मान्यताओं और मर्यादाओं के अनुकूल नहीं होते। बच्चों पर विज्ञापनों का दुष्प्रभाव भी चिन्ता का विषय है।

रेडियो, टी.वी. और प्रिंट मीडिया के अतिरिक्त इंटरनेट भी बाजारवाद को फलने-फूलने में मदद कर रहा है। इंटरनेट के आगमन के बाद फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम आदि कई तरह के डिजीटल प्लेटफार्म ने उपभोक्ता जगत में अपनी पैठ बना ली है। इस समय भारत में यू-ट्यूब के 44.8 करोड़, फेसबुक के 41 करोड़, इंस्टाग्राम के 21 करोड़ तथा ट्विटर के 1.50 करोड़ उपभोक्ता हैं।[2]

इतने बड़े 'लक्ष्य-समूह' की अनदेखी बाजार कैसे कर सकता है ? यही वजह है कि इन बड़े प्लेटफार्म्स पर करोड़ों रूपयों के विज्ञापन प्रतिदिन प्रसारित-प्रचारित हो रहे हैं। विज्ञापनदाता इन वेब एप्लीकेशन्स पर

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

उपस्थित 'लक्ष्य-समूह' की रूचियों को चिन्हित कर, उसी के आधार पर अपने उत्पादों का विज्ञापन प्रसारित करते हैं। इन दिनों नए वेब एप्लीकेशन्स में OTT अर्थात् ओवर द टॉप प्लेटफार्म की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है। अर्नेस्ट एंड यंग की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2020 में कोविड महामारी का सर्वाधिक लाभ ओटीटी प्लेटफार्म को मिला। इस समय भारत में 40 से ज्यादा ओटीटी प्लेटफार्म हैं। ओटीटी प्लेटफार्म के अन्तर्गत डिज्नी प्लस हॉटस्टार, वूट, इरोज नाउ, नेटफ्लिक्स, अमेजॉन प्राइम वीडियो, सोनी लिव, जी-5 तथा आल्ट बालाजी जैसे ऐप्स के साथ-साथ द वायर, द प्रिंट तथा स्क्रॉल जैसी समाचार वेबसाइट भी आती हैं। अधिकांश ओटीटी प्लेटफार्म्स में हिंसा, अश्लीलता और धार्मिक आस्था को आहत करने वाले 'कंटेंट' का धड़ल्ले से प्रसारण हो रहा है। सेक्रेड गेम्स, मिर्जापुर, लस्ट स्टोरीज, आश्रम, अपहरण, लैला, पाताललोक, XXX-2, तांडव, द लास्ट एम्पायर तथा द फैमिली मैन- ऐसी ही वेबसीरीज है, जिनमें अश्लीलता, गंदी गालियाँ, अपशब्द एंव हिंसा का भरपूर चित्रण है। अधिकांश वेबसीरीज में विवादित दृश्यों अथवा 'कंटेंट' को जान-बूझकर डाला जाता है ताकि सीरीज का देश-विदेश में बिना विज्ञापन दिए ही, प्रचार-प्रसार हो जाए और अच्छी-खासी 'व्यूअरशिप' या टी.आर.पी. मिल जाए। 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का सबसे ज्यादा दुरूपयोग ओ.टी.टी. प्लेटफार्म पर ही हो रहा है। यहाँ प्लेटफार्म बाजारवाद से 'बाजारूपन' की ओर अग्रसर हो रहा है। ओटीटी प्लेटफार्म के संदर्भ में बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2018 में ओ.टी.टी. का बाजार 3,560 करोड़ रूपये का था, जो वर्ष 2023 में बढ़कर 35,730 करोड़ रूपये तक पहुँच जाने का अनुमान है।[3] यह बाजार दर्शकों की हिंसा, नग्नता, गाली-गलौज को 'ग्लोरीफाइ' करके दिखा रहा है और उपभोक्ता अनजाने में ही इन कुत्सित वृत्तियों को आत्मसात् करता जा रहा है।

उपभोक्तवादी संस्कृति को साइबरस्पेस ने एक नया आयाम प्रदान किया है। साइबरस्पेस सूचना का एक सुपर हाइवे है, जहाँ से कम्प्यूटर की सहायता से कोई भी, कुछ भी कभी भी, कहीं भी जानकारी ले सकता है। साइबरस्पेस का मुख्य प्रयोग व्यापार, बैंक, पोस्ट ऑफिस, पुस्तकालय, बाजार, वीडियो, टेलीफोन इत्यादि के क्षेत्र में किया जा रहा है।इस अत्याधुनिक नेटवर्क तंत्र के माध्यम से उत्पादक, कम्प्यूटर-समुदाय में वांछित व्यक्ति तक अपना संदेश पहुँचा सकता है। साइबरस्पेस से ही सम्बद्ध एक संचार-तकनीक इंटरनेट है, जिसकी उत्पत्ति नासा की सैन्य अनुसंधान परियोजना के तहत हुई। परमाणु युद्ध की स्थिति में इस संचार-तकनीक को सबसे कारगर माना गया। इस अत्याधुनिक तकनीक में सैन्य विमानों को उड़ाने वाले पायलटों को प्रशिक्षित करने के लिए 'Virtual Reality' का आश्रय लिया गया। 'Virtual Reality' से तात्पर्य है प्रतीयमान यथार्थ अर्थात् ऐसा यथार्थ जो काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक यथार्थ से अधिक यथार्थपूर्ण लगे। कम्प्यूटर के पर्दे पर उपस्थित दृश्य को त्रि-आयामी रूप देने के लिए इस तकनीक के अन्तर्गत विशेष प्रकार के हेल्मेट, चश्में, हाथों के दस्ताने तथा बाडी-सूट की आवश्यकता पड़ती है। मार्केट में इन उपकरणों की कीमत बहुत अधिक है। इस बेहद मंहगी तकनीक के प्रयोग से प्रयोक्ता वर्चुअल माइकल जैक्सन के साथ नृत्य कर सकता है; अपने पसंदीदा नेता से बातें कर सकता है। डॉक्टर अपने वर्चुअल पेशन्ट पर मनचाहे ऑपरेशन का अभ्यास कर सकता है; वास्तुकार अपने ग्राहक के साथ वर्चुअल इमारतों की सैर पर निकल सकता है और वास्तविक भवन-निर्माण में किसी भी तरह की खामी आने से पहले ही दूर कर सकता है। इस तरह से इस तकनीक से अन्तरिक्ष-विज्ञान, वास्तुजगत, चिकित्सा जगत तथा शिक्षा आदि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव आने की संभावना है परन्तु प्रतीयमान यथार्थ के कई घातक परिणामों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। वस्तुतः किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा तकनीक की गुणवत्ता उसके अच्छे और बुरे दोनों पक्षों के सम्यक् आकलन करने के पश्चात् ही तय की जा सकती है। जहाँ साइबरस्पेस सूचना के सुपरहाइवे के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व की भौगोलिक दूरी को सीमित कर, 'विश्व ग्राम' की संकल्पना को साकार करता है वहीं इसकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता समाज के पारम्परिक ढ़ांचें के लिए चुनौती बन गई है। साइबर-तकनीक जनित कुछ अन्य विसंगतियाँ भी उभरकर सामने आई है। मसलन बच्चो का अपहरण किस प्रकार किया जाए या उनका शोषण अथवा बलात्कार किया जाए, एटम बम कैसे बनाया जाए, डकैती कैसे डाली जाए, हत्या करने के नानाविध तरीके आदि की जानकारी सूचना के

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

सुपरहाइवे पर सुगमता से प्राप्त हो जाती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर इसने व्यक्ति से उसके एकान्त को छीन लिया है। आज सैंकड़ों नेटवर्क पर इस प्रकार के निजी बुलेटिन बोर्ड की अधिकता है, जिसमें नग्न यौनाचार अपनी पराकाष्ठा को छू रहे हैं। समस्या यह है कि साइबर स्पेस का आधा भाग जो व्यावसायिक नहीं है, वह यौन-क्रियाओं से सम्बद्ध है। Altitude Sex के नाम से चलाए जा रहे ऐसे नेटवर्क को 'Virtual Reality' की सहायता से देखा जाता है। Virtual Sex को पश्चिमी आलोचक कई समस्याओं के निदान के रूप में देखते हैं। Virtual Reality के जनक हार्वड रिनगोल्ड ने Virtual Sex के प्रयोग से एड्स जैसी भयंकर बीमारी से बचाव का मार्ग सुझाया है। वे इस तकनीक की वकालत जनसंख्या नियंत्रण के विकल्प के रूप में भी करते हैं। हो सकता है जनसंख्या-नियंत्रण और एड्स से मुक्ति दिलाने में यह तकनीक कारगर साबित हो, परन्तु इससे मानव-व्यवहार से जुड़ी कुछ और तरह की समस्याएँ खड़ी होती हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसेकि ऐसी तकनीक का प्रयोग करने वाला समाज पूरी तरह से कल्पना और फैन्टेसी की दुनिया में रहने का आदी बन जाता है। यथार्थ की कठोरता से सामना करने की जगह, उससे पलायन का विकल्प उसे श्रेयस्कर लगेगा। किशोरावस्था के बच्चों पर इस त्रि-आयामी तकनीक का सबसे घातक प्रभाव पड़ रहा है।

इन नवीनतम संचार-तकनीकों के प्रयोग से मानव-समाज पर कई अन्य प्रकार के हानिकारक प्रभाव भी पड़ रहे हैं। मसलन इस तंत्र पर व्यक्ति घण्टों बैठे-बैठे, पृष्ठ दर पृष्ठ, विषय दर विषय, देश दर देश तथा कम्प्यूटर दर कम्प्यूटर की जानकारी पा सकता है लेकिन क्या ज्ञान मात्र पृष्ठ पलटने से आ जाता है? इस तरह मात्र बोरियत ही पैदा होती है। भारतीय समाज परम्पराओं में बंधा समाज है। परम्परागत समाज सदैव लक्ष्य प्रेरित होते हैं अतः ऐसे समाज में बोरियत, अकेलेपन जैसी कोई चीज नहीं होती। ऐसे समाज मानवीय भावनाओं से संगुफित होते हैं। वहाँ मानव जीवन का विशिष्ट अर्थ होता है। बोरियत उस संस्कृति का अंग है जहाँ वैयक्तिक और सामुदायिक लक्ष्य अपना मूल्य खो चुके हैं। ऐसे समाज में हर समय कुछ नया देखने की इच्छा मन में रहती है।

साइबर स्पेस के विस्तार के साथ-साथ मानव-मस्तिष्क आँकड़ों को संचित करने की क्षमता भी खो रहा है। वैज्ञानिकों का दावा है कि संचार-प्रौद्योगिकी के बढ़ते इस्तेमाल के कारण मनुष्य में विश्लेषण की क्षमता धीरे-धीरे कम हो रही है। यह सर्वविदित सत्य है कि मनुष्य अपनी बुद्धि के कारण समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है। इस दृष्टि से देखा जाए तो संचार-तकनीक मनुष्य के अस्तित्व के लिए एक चुनौती प्रतीत होती है। साइबर-स्पेस ने 'समुदाय' और 'अस्तित्व' की भी नयी परिभाषाएँ देनी आरम्भ कर दी है।मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जीवन्त समाज में रहने वाले मनुष्य को साइबर स्पेस समाज के नाम पर 'इलेक्ट्रॉनिक नेबर' का विकल्प सुझाता है। इस प्रतीयमान समाज में 'इलेक्ट्रॉनिक नेबर' भूगोल के आधार पर नहीं बल्कि वैचारिक समानता के आधार पर बनते हैं। व्यक्ति अपनी इच्छानुसार 'Virtual Society' का चयन कर सकता है। लेकिन क्या ऐसी 'Virtual Society' राग, संवेदना और भावनाओं पर आधारित होगी? निश्चित रूप से नहीं। ऐसे में ऐसी 'Virtual Society' से हम क्या पाएगें? क्योंकि महज तथ्यों को जान लेना और उनके बल पर पैसा कमा लेने में जीवन की सार्थकता नहीं है। सच्चाई यह है कि वास्तविक समुदायों में ही भावों, विचारों और सन्दर्भों का सृजन होता है। साइबर स्पेस समाज का वास्तविक समाज नहीं है। यहाँ आप बटन को दबाने के साथ समुदाय को बंद कर सकते हैं। वास्तव में Virtual Society के माध्यम से साइबर स्पेस वास्तविक जगत की समस्याओं, स्थितियों और कठोर यथार्थ से बचने का रास्ता सुझाता है और समाज को पलायनवादी मनोवृत्ति की ओर अग्रसर करता है।

निश्चित रूप से साइबर स्पेस का विकास गैर-पश्चिम सभ्यताओं को विश्व के फलक से मिटाने के लिए किया गया। एक बार जब किसी संस्कृति को डिजीटल रूप में स्टोर किया जाता है, तब हर वह व्यक्ति जो आराम कुर्सी पर बैठकर संस्कृति का अन्वेषण करता है, उसे यह अन्वेषण वास्तविकता से कहीं अधिक वास्तविक और यथार्थपूर्ण प्रतीत होता है। इस दृष्टि से साइबर स्पेस विश्व के संग्रहालयीकरण की ओर एक बड़ा कदम है,

ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)

जहाँ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से भिन्न संस्कृति केवल डिजीटल रूप में रहेगी। गैर-पश्चिमी संस्कृतियों के न केवल वर्तमान वरन् उनके भविष्य को भी डिजीटल रूप में ही देखा जा सकेगा।

आज हम सभी को यह कड़वा सच स्वीकार करना होगा कि व्यावसायिक मीडिया के दबाव में हम 'यथार्थ' के अस्वीकार की ओर बढ़ रहे हैं और व्यावसायिक मीडिया द्वारा दिए गए भ्रमपूर्ण जीवन को शाश्वत सत्य मानकर उसे पाने को आतुर हो रहे हैं। विचार, व्यवहार तथा पारस्परिक संबंधों को सुरक्षित रखने के लिए प्रयास हमें स्वयं ही करने होंगे। विदेशी चैनल अगर हमें प्रौद्योगिकी निर्यात कर रहे हैं तो हमें तय करना होगा कि क्या वे सिर्फ हमें तकनीक, सूचना और मनोरंजन ही देना चाहते हैं और जो कुछ भी विदेशी चैनल भारतीय समाज को परोसकर दे रहे हैं, क्या वह हमारी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों के अनुरूप हैं? संचार-माध्यमों के नकारात्मक पक्ष पर पश्चिम के कई प्रख्यात विद्वानों ने सम्यक् प्रकाश डाला है। आर्थर. सी. क्लार्क का **'2001 : A Space Odessy'** नामक उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस उपन्यास का नायक **'Hal-9000** नामक कम्प्यूटर है, जो इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति से सम्पन्न है। यह कम्प्यूटर, अपने स्पेसशिप के समस्त साथियों को मार डालता है। अन्त में आखिरी जीवित सदस्य डेव बचता है, जिसे अपने आपको हाल-9000 के हाथों मरने से बचाने के लिए उस कम्प्यूटर की मेन मैमोरी को नष्ट करना पड़ता है। क्लार्क ने इस उपन्यास में संचार-प्रौद्योगिकी के खराब पक्ष का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है। इसी तरह से अडोलस हक्सले ने **'Brave new world'** में, जार्ज आरवेल ने **'1984'** में तथा सैमुअल बटलर ने **'Erwhon'** में संचार-प्रौद्योगिकी से समाज, संस्कृति, इतिहास तथा कलाओं पर पड़ने वाले कुप्रभावों को रेखांकित करते हुए, उसके विवेकपूर्ण इस्तेमाल पर बल दिया है। जो माध्यम पश्चिम के स्वच्छन्दता पूर्ण वातावरण में संकट पैदा कर रहे हैं, वह हमारे समाज के लिए निश्चित रूप से एक भयावह चुनौती है। इससे बचने के लिए मीडिया का बहिष्कार भी एक विकल्प हो सकता है किन्तु ग्लोबलाइजेशन के युग में स्वयं को मीडिया से काट देने के कारण कूपमण्डूक की स्थिति में जीना होगा। अतएव बेहतर यह होगा कि हम बाजारवादी संस्कृति की पूरी प्रक्रिया के प्रति सावधान रहे। देसी पत्र-पत्रिकाओं और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विशेष रूप से दूरदर्शन पर यह उत्तरदायित्व आ जाता है कि वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हिंसा और अश्लीलता का प्रश्रय लेकर विदेशी मीडिया से प्रतिस्पर्द्धा करने की बजाय राष्ट्रीय सरोकारों और सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने वाले ऐसे कार्यक्रमों का प्रस्तुतीकरण करें, जो उत्पाद की गुणवत्ता में 'सत्य' उसकी प्रस्तुति में 'सुन्दर' तथा समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से 'शिव' हों। यह सच है कि सूचना प्रौद्योगिकी से मानव-जीवन में क्रांतिकारी बदलाव आया है किन्तु उसकी 'एवज' में हमनें जो कुछ खोया है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इस संदर्भ में टी.एस. इलियट की **'The Rock'** नामक कृति की पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

**Where is the life we have lost in living?**
**Where is the wisdom we have lost in knowledge?**
**Where is the knowledge we have lost in Information?** [4]

अर्थात् जीवन कहाँ है, उसे तो हमनें रहन-सहन में खो दिया?
प्रज्ञा कहाँ है, उसे तो हमनें ज्ञान पाने में खो दिया?
ज्ञान कहाँ है, उसे तो हमनें सूचनाओं में खो दिया?

## निष्कर्ष:-

उत्तर आधुनिक बाजार में 'मुनाफा' सर्वोपरि है। यह 'बाजार' मंगल कामना से नहीं बल्कि 'दुनिया जाए भाड़ में' के भाव से संचालित है। परम्परागत बाजार तटस्थ भाव से माल बेचते थे जबकि संचार-माध्यमों के बल पर 'बाजार' का विस्तार करने के पीछे लोभ-लालच के भाव से माल बेचने और मुनाफा कमाने की चाहत है। यह बाजार 'कबिरा खड़ा बाजार में' के 'बाजार' से भिन्न है। कबीर जिस

**ISSN: 2348 – 2605 Impact Factor: 5.659 Volume 9-Issue 4, (October-December 2021)**

'बाजार' की बात करते है उसमें सबकी खैर अर्थात् मंगलकामना का भाव निहित है वहीं उत्तरआधुनिकता के दौर का 'बाजार' एक 'महाठगिनी' है, जो उपभोक्ता को अपने रूपजाल में फाँसकर उसका सबकुछ ठग लेता है। संचार-माध्यम 'बाजार' को अपनी 'मुनाफाखोरी' के लिए इस हद तक इस्तेमाल कर रहे हैं कि उसमें बाजारूपन आ गया है। कुल मिलाकर संचार-माध्यमों ने बाजार को 'आत्केन्द्रित' बना दिया और बाजार ने संचार-माध्यमों का बाजारीकरण कर दिया है।

**संदर्भ-सूची**

1. Business Today/ 'Indian Advertising Industry to grow to 10.8% to 62577 crore by 2021 end'/ 6 Feb 2021.
2. **https://www.indiatoday.in/**'Government reveals stats on social media users, WhatsApp leads while YouTube beats Facebook, Instagram'/
3. Indian OTT market to grow 10 time to $ 5 bn by 2023 : BCG/ https://www.techcircle.in
4. 'The Rock' / T.S. Eliot / Fabes & Faber. 1934.